THE HINDU

Date:02-03-22

A cautionary tale

India must heed the warning of the IPCC report and shore up adaptation measures

Editorial

Amidst global turmoil, the Intergovernmental Panel on Climate Change — the largest international consortium of scientists analysing and reviewing the evidence on the present and future man-made impacts of climate change — has a message that is predictably dire. The world faces unavoidable multiple climate hazards over the next two decades with global warming of 1.5°C; even temporarily exceeding this warming level would mean additional severe impacts, some of which will be irreversible. The report points out that the rise in weather and climate extremes has led to some irreversible impacts as natural and human systems are pushed beyond their ability to adapt. Alluding to the Conference of the Parties (COP26) in Glasgow, in November 2021, the report notes that most of the targets that countries have set for themselves are too far in the future to have an impact in the short term at meaningfully reducing the climate impact.

India will achieve net zero emissions latest by 2070, that is, there will be no net carbon emissions, Prime Minister Narendra Modi declared at the COP26 summit. By 2030, India would also ensure 50% of its energy will be from renewable energy sources. However, none of this can help the 1.5°C mark from being breached. A major point of emphasis of the report, particularly for South Asia, is the trend in the 'wet bulb' temperature — an index of the impact of heat and humidity combined — and its effect on health. Lucknow and Patna, according to one of several studies cited in the report, were among the cities predicted to reach wet-bulb temperatures of 35°C if emissions continued to rise, while Bhubaneshwar, Chennai, Mumbai, Indore, and Ahmedabad are 'at risk' of reaching wet-bulb temperatures of 32°C-34°C with continued emissions. This will have consequences such as a rise in heat-wave linked deaths or reduced productivity. Global sea levels will likely rise 44cm-76cm this century if governments meet their current emission-cutting pledges. But with higher emissions, and if ice sheets collapse more quickly than expected, sea levels could rise as much as 2 metres this century and 5m by 2150. India is one of the most vulnerable countries in terms of the population that will be affected by sea-level rise. By the middle of the century, around 35 million of its people could face annual coastal flooding, with 45 million-50 million at risk by the end of the century if emissions are high. Experience has shown that partisan economic calculations trump climate considerations, but India must shore up its adaptation measures and urgently move to secure the futures of its many vulnerable who have the most to lose.

दैनिक भास्कर

Date:02-03-22

विश्व युद्ध से बचे तो कार्बन उत्सर्जन मारेगा

संपादकीय

अगर बड़ी ताकतों को सुबुद्धि आए और आसन्न विश्व-युद्ध का साया खत्म हो, तो भी बच्चों का भविष्य संकट में रहेगा। पर्यावरण परिवर्तन पर इंटर-गवर्नमेंटल पैनल की ताजा रिपोर्ट के अनुसार भारत में पर्यावरण बदलाव के कारण अगले 28 वर्षों में शहरवासियों की आबादी लगभग दोगुनी (88 करोड़) हो जाएगी। लेकिन गांवों के मुकाबले उनके जीवन पर बड़ा खतरा होगा क्योंकि आबादी घनत्व उस बदले तापमान और आर्द्रता को और बढ़ाएगा। रिपोर्ट के अनुसार वेट-बल्ब टेम्परेचर (आर्द्रता और तापमान का संयुक्त पैमाना) 31 डिग्री तक पहुंच जाएगा, जो मानव जीवन के लिए खतरनाक होता है। अभी भी कई बार अनेक स्थानों में कुछ काल तक यह तापमान पाया जाता है। अगर यह तापमान 35 डिग्री तक पहुँंच जाए तो मानव-जीवन का छह घंटे से ज्यादा बचना मुश्किल होता है। इस रिपोर्ट के अनुसार सन 2050 तक मुंबई में समुद्र का तापमान बढ़ने के कारण जबरदस्त बाढ़ आ सकती है और हर साल करीब दस लाख करोड़ रुपए से ज्यादा का नुकसान हो सकता है। अहमदाबाद भट्टी की तरह गरम हो सकता है और चेन्नई, भुवनेश्वर, पटना और लखनऊ सहित कई शहरों के लोग गर्मी और आर्द्रता के शिकार हो सकते हैं। कहने की जरूरत नहीं कि भारत दुनिया में पर्यावरण परिवर्तन के शिकार देशों में सबसे मुहाने पर है। इसमें सबसे ज्यादा प्रभाव भारत के शहरों में रहने वाला सामाजिक और आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग होगा क्योंकि यातायात, पानी, स्वच्छता और ऊर्जा जैसे अन्तर-संरचनात्मक व्यवस्थाओं की कमी की मार सबसे पहले उस पर पड़ेगी। अगर कार्बन उत्सर्जन की रफ्तार में कमी की योजना वर्तमान दर से जारी भी रहती है तो वेट-बल्ब टेम्परेचर देश के भागों में खतरनाक 31 डिग्री पहुंच जाएगा। लिहाजा पर्यावरण क्षति रोकने के लिए और ज्यादा तेजी से काम करना होगा। वेट-बल्ब पैमाना का मतलब है स्थिर दबाव, यह वह निम्नतम तापमान है जिस पर पानी वाष्प बन कर हवा को ठंडा करता है।

दैनिक जागरण

Date:02-03-22

पिटे हुए मोहरे की तरह यूक्रेन

आर. विक्रम सिंह

यह प्रश्न बहुत परेशान करने वाला है कि यदि यूक्रेन जैसा संप्रभु देश अपनी सुरक्षा के लिए नाटो सरीखे किसी सैन्य संगठन का हिस्सा बनना चाहे तो क्या उसे रूस जैसे ताकतवर पड़ोसियों की शर्तों पर चलना पड़ेगा और यहां तक कि उसके हमले का सामना करना पड़ेगा? इसी तरह एक प्रश्न यह भी उठ खड़ा हुआ है कि क्या आपकी अपनी संप्रभुता को किसी तीसरे देश की आशंकाओं का कारण बनना चाहिए? यूक्रेन पर रूस के हमले जारी हैं। इस अर्थहीन युद्ध में जनहानि भी बढ़ती जा रही है। सोवियत संघ के विघटन से जो देश बने, उनमें रूस के बाद यूक्रेन ही दूसरा सबसे बड़ा यूरोपीय देश है। सोवियत संघ के विघटन ने अमेरिका को एकमात्र वैश्विक शक्ति बना दिया। कतिपय अतिउत्साही अमेरिकी टिप्पणीकारों ने इस एकध्रुवीय काल को 'इतिहास का अंत' तक कह डाला। सोवियत रूस के विघटन से अस्तित्व में आए 15 देश किसी संघर्ष या आंदोलन की उपज नहीं थे। उनके पास जनसंघर्ष से निकले तपे हुए नेतागण नहीं, बल्कि नौकरशाह मनोवृत्ति के प्रशासक थे। वे संप्रभुता, लोकतंत्र और राष्ट्रीयता का अर्थ समझे बगैर स्वतंत्र देश के शासक बन गए थे। इन शासकों ने प्राय: लोकतांत्रिक व्यवस्था का उपयोग अपने सत्ताधिकार की औपचारिक स्वीकार्यता के लिए किया।

सोवियत संघ के विघटन के बाद भीषण आर्थिक समस्याओं का शिकार रूस स्वयं किसी भी प्रकार का नेतृत्व दे सकने में असमर्थ था। एकाएक उत्पन्न हुए शक्ति के इस निर्वात को भरने का जो उपाय अमेरिकी सत्ता प्रतिष्ठान की समझ में आया, वह था कि सोवियत संघ से निकले देशों में पश्चिमी शासन पद्धति अथवा लोकतंत्र, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था एवं नाटो सुरक्षा संधि का विस्तार करना। जब सोवियत संघ अपने साम्यवादी लक्ष्यों के साथ इतिहास के गर्त में जा चुका था और नया रूस पूंजीवादी व्यवस्था को अपना चुका था तो नाटो के अस्तित्व का कोई औचित्य नहीं रह गया था। नाटो का घोषित उद्देश्य ही साम्यवादी व्यवस्था के विस्तार को रोकना था, फिर भी सोवियत संघ के विघटन के बाद न केवल नाटो कायम रहा, बल्कि उसका विस्तार भी होता गया। रूस की पश्चिमोत्तर सीमा से लगे तीन नए बाल्टिक देशों और बुल्गारिया को 2004 में नाटो में शामिल किया गया। इन देशों को यूरोपीय संघ में शामिल करना तो सकारात्मक कदम था, लेकिन नाटो सैन्य सहयोग क्यों? इसका यही आशय निकलता है कि रूस अभी भी अमेरिका का निशाना बना हुआ था। इसी क्रम में 2008 में बुखारेस्ट सम्मेलन में यूक्रेन और जार्जिया को भी नाटो सदस्य बनाने की स्वीकृति दी गई। जब रूस से किसी यूरोपीय देश और अमेरिका को कोई खतरा नहीं रह गया था तो भी उसकी घेरेबंदी का भला क्या औचित्य था? पुतिन ने इसे ही खतरे के संकेत के रूप में लिया। इससे पहले कि नाटो की परमाणु मिसाइलें यूक्रेन और जार्जिया में तैनात होतीं, पुतिन ने जार्जिया के विभाजन के लिए सैन्य अभियान छेड़ दिया। विभाजित जार्जिया के दो राज्य आज रूस के नियंत्रण में हैं। शेष जार्जिया के नाटो देश बनने की अब गुंजाइश नहीं रही। इसके बाद यूक्रेन में आरेंज रिवोल्यूशन के रूप में हुए जन आंदोलन ने वहां रूस विरोधी माहौल बना दिया। पूर्व राष्ट्रपति यानोकोविच को देश छोड़कर भागना पड़ा। परिणामस्वरूप पुतिन ने यूक्रेन के रूसी भाषी क्षेत्र क्रीमिया पर कब्जा कर लिया। इससे क्रीमिया जैसे सामरिक अड्डे का नाटो के लिए उपयोग संभव नहीं रह गया।

यूरोप में जब एक रणनीतिक यथास्थिति का माहौल था, तब यूक्रेन और रूस में मिंस्क में हुए समझौते के तहत एक अस्थायी शांति बनी। माना जा रहा था कि दक्षिण चीन सागर में चल रहे रणनीतिक वर्चस्व के चीनी अभियान के किनारे

आने तक यूरोप में स्थिरता बनी रहेगी। समस्या यह थी कि ताइवान जैसे टकराव वाले बिंदु के बावजूद हिंद-प्रशांत क्षेत्र में नाटो जैसा कोई संगठन आकार नहीं ले पाया था। उधर रूस और जर्मनी में बढ़ती जा रही आर्थिक और विशेषकर रूसी गैस आपूर्ति पर निर्भरता अमेरिकी चिंता का बड़ा कारण थी। यूक्रेन को बड़ा राजस्व यूरोप की उस गैस आपूर्ति से मिलता रहा है, जिसकी पाइपलाइन उसकी जमीन से गुजरती है। यूक्रेन में 2014 में हुए सत्ता परिवर्तन की प्रतिक्रिया में रूस ने जर्मनी और यूरोपीय देशों को गैस आपूर्ति की नई वैकल्पिक पाइपलाइन का कार्य पूर्ण किया। यूक्रेन के समक्ष राजस्व की क्षति की आशंका उत्पन्न हो गई। तब ऐसी आवश्यकता उत्पन्न हो गई, जो रूस-जर्मनी की नजदीकियां रोके और नाटो देशों को अमेरिका पर पहले की तरह निर्भर बना दे। इसी कारण रूसी भाषा बहुल देशों के जरिये यूक्रेन-रूस तनाव का माहौल बना, जिसने युद्ध का रूप ले लिया है। अभी तक सब पटकथा के मुताबिक चल रहा है। जर्मनी से नई गैस पाइपलाइन का समझौता टूट गया है। युद्ध का दोष रूस पर आया है। यूक्रेन के प्रति सहानुभूति की लहर चल रही है। यह स्वाभाविक है। अब पुतिन नए खलनायक हैं।

देखा जाए तो यूक्रेन के दीर्घकालिक हित रूस से ही जुड़े थे, जो अब उसका शत्रु बन गया है। यूक्रेन पर रूस के हमलों के बीच एक सवाल यह भी है कि अगर यूक्रेन नाटो में शामिल हो भी जाता तो कौन सा पहाड़ टूट पड़ता। हमारे पड़ोस में भी तो पाकिस्तान पहले अमेरिका और अब चीन से गलबहियां करता आया है। पाकिस्तान के कब्जे वाले कश्मीर में सीपैक जैसी संवेदनशील परियोजना के बावजूद हमने कभी बयानों से आगे बढ़कर बात नहीं की। दरअसल यहां एक बड़ा अंतर यह है कि हमारी तरह रूस अपने को रणनीतिक दृष्टि से शत्रुओं का बंधुआ नहीं बनने दे सकता। राष्ट्रीय शक्ति और सम्मान की अपनी-अपनी परिभाषाएं हैं। पुतिन ने एक तरह राख से उठकर अस्तित्व के संकटों का सामना करते हुए रूस का नवनिर्माण किया है। उनके अपने तर्क हैं, जिन्हें नकारा नहीं जा सकता। इस संकट का तानाबाना उस पश्चिमी मानसिकता ने बुना है, जो विश्व की राजनीति और अर्थव्यवस्था को अपने हिसाब से चलाना चाहती है।

निरंतर आक्रामक हो रहे पुतिन ने यूक्रेन में दखल देने वालों को परमाणु आक्रमण की भी धमकी दे दी है। अमेरिका को अपनी शक्ति की वैश्विक पुनर्स्थापना के लिए एक खलनायक की दरकार थी, जो पुतिन के रूप में पूरी हो गई है। और यूक्रेन? उसकी जितनी उपयोगिता थी, वह पूरी होती दिख रही। उसकी हालत वैश्विक शतरंज के पिटे हुए मोहरे की तरह बिसात से उठाकर बगल में रख दिए जाने जैसी लग रही।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:02-03-22

नई व्यवस्था का संतुलन

संपादकीय

यूक्रेन पर रूस के आक्रमण के बाद जो घटनाक्रम सामने आया है उससे यही संकेत मिलता है कि यह संघर्ष लंबा चलेगा और यूरोप तथा अमेरिका दोनों इसमें शामिल होंगे। इसके अलावा अनिवार्य तौर पर भूराजनीतिक प्राथमिकताएं एवं गठबंधन बदल जाएंगे। यह बदलाव भारत के अंतरराष्ट्रीय संबंधों के स्वरूप और दायरे दोनों को प्रभावित करेगा, खासतौर

पर चीन के बढ़ते वैश्विक दबदबे को संतुलित करने की कोशिश में अमेरिका के साथ भारत की संबद्धता को देखते हुए। चीन भारत की उत्तरी और पूर्वी सेना पर अपना शक्ति प्रदर्शन कर रहा है, ऐसे में अमेरिका के सामरिक रुख में बदलाव भारत के लिए गहरी चिंता का विषय होगा।

साधारण शब्दों में कहें तो अमेरिकी प्रशासन का ध्यान अटलांटिक गठजोड़ पर होना हिंद-प्रशांत क्षेत्र पर उसका जोर कम कर सकता है जबकि इस क्षेत्र में भारत की अहम भूमिका है। इसका सबसे स्पष्ट प्रमाण था अमेरिका, भारत, जापान और ऑस्ट्रेलिया के बीच क्वाड सुरक्षा गठजोड़, जिसे अमेरिका के पिछले राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप और वर्तमान राष्ट्रपति जो बाइडन दोनों के कार्यकाल में गति मिली। हालांकि क्वाड के निर्माण की घोषित वजह थी एक 'मुक्त, खुला और समृद्ध प्रशांत' क्षेत्र तैयार करना। यह मूल रूप से एक सुरक्षा गठजोड़ है जो चीन के क्षेत्रीय दबदबे के खिलाफ है। इसने बीते कुछ वर्षों में कई संयुक्त समुद्री सैन्य अभ्यास भी किए। ऐसे में सवाल उठते हैं कि भारत बदलती भू-राजनीतिक हकीकतों के दरमियान अपनी प्रासंगिकता कैसे बनाए रखेगा?

कुछ टीकाकारों का सुझाव है कि भारत को उदार बहुलतावादी संस्कृति वाले लोकतंत्र के रूप में अपनी शक्ति का इस्तेमाल करना चाहिए। हालांकि ये भारत के लिए वांछित मूल्य हैं लेकिन अधिनायकवादी चीन का उदय दिखाता है कि ये मूल्य अपने आप में पर्याप्त वजह नहीं हैं। नई विश्व व्यवस्था में भारत की प्रासंगिकता इस बात पर निर्भर करेगी कि वह विश्व बाजार में उसका आर्थिक कद कैसा है और वह निवेशकों के लिए कितना आकर्षक तथा कारोबार की दृष्टि से कितना उपयोगी है। यह बात याद करने लायक है कि अमेरिका ने ऐसे समय में असैन्य परमाणु समझौते को आगे बढ़ाया था जब भारतीय अर्थव्यवस्था मजबूती से बढ़ रही थी। परंतु अब अर्थव्यवस्था की स्थिति वैसी नहीं है। इसके विपरीत आर्थिक नीति हाल के वर्षों में सुधार पूर्व के दौर की याद दिलाती है। दरों में इजाफा करके अवरोध उत्पन्न किया जा रहा है तथा आत्मनिर्भर भारत के नारे के पीछे हर मामले में स्व सक्षम होने की धारणा निहित है। इस लक्ष्य की तलाश में सरकार ने मोबाइल फोन से लेकर कपड़ा तक करीब 20 उद्योगों के लिए आयात प्रतिस्थापन का विकल्प चुना है और उन्हें आयात प्रतिस्पर्धा से बचाने का तय किया है। ऐसा करके कोई देश समृद्ध नहीं हुआ।

उस दृष्टि से देखें तो रणनीतिक क्षमताएं विकसित करने के लिए कुछहद तक आत्मनिर्भरता जरूरी है। उदाहरण के लिए भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) ने 120 बड़े, मझोले और छोटे उपक्रमों का एक मजबूत विनिर्माण तंत्र निर्मित किया है। वाहन कलपुर्जा उद्योग जिसे गड़बड़ियों की आशंका वाला माना जाता था उसने भी घरेलू वाहनों की मांग की बदौलत अपने आपको विश्व स्तरीय निर्यातक में बदल लिया है। परंतु लागत प्रतिस्पर्धा से संचालित वैश्विक व्यवस्था में वैश्विक आपूर्ति शृंखलाओं के महत्त्व की अनदेखी करना मुश्किल है। इसरो भी कुछ कलपुर्जों को उच्च स्तरीय प्रक्रियाओं के लिए जापान भेजता है। क्षेत्रीय व्यापार साझेदारियों से बाहर होना आर्थिक और राजनीतिक संकेत दोनों दृष्टियों से नुकसानदेह है। दूसरे शब्दों में भारत की आर्थिक नीति में आत्मनिर्भरता के लाभ और वैश्वीकरण के लाभों का संतुलन जरूरी है। जरूरत यह है कि भारत को बाजारोन्मुखी अर्थव्यवस्था बनाने पर ध्यान केंद्रित किया जाए। इस दौरान शिक्षा और स्वास्थ्य में निवेश के साथ प्रक्रियाओं को सुसंगत बनाना होगा। यदि ऐसा किया जा सका तो वैश्विक व्यवस्था में भारत के महत्त्वपूर्ण बने रहने की गारंटी है।

Date:02-03-22

यूक्रेन के अनुभव से सीखने की जरूरत

प्रसेनजित दत्ता, (लेखक बिज़नेस टुडे और बिज़नेस वर्ल्ड के पूर्व संपादक तथा संपादकीय सलाहकार संस्था प्रोजैकव्यू के संस्थापक हैं)

यूक्रेन पर रूसी सेना के आक्रमण के बाद वहां फंसे भारतीय विद्यार्थियों पर पूरे देश की नजरें टिक गई हैं। ये विद्यार्थी वहां चिकित्सा विज्ञान की पढ़ाई करने गए थे। यूक्रेन में मची अफरातफरी और रूस के लगातार आक्रामक होते रुख के बीच वे अब स्वदेश लौटने के लिए व्यग्र हैं और किसी भी तरह वहां से तत्काल निकलने का प्रयास कर रहे हैं। सैकड़ों विद्यार्थियों ने बंकरों में शरण ले रखी है और उनके पास न पैसे हैं और न भोजन ही उपलब्ध है। कई विद्यार्थी जोखिम मोल लेते हुए पैदल ही यूक्रेन के पड़ोसी देश पोलैंड और रोमानिया की सीमाओं तक बढ़ रहे हैं। उन्हें उम्मीद है कि इन देशों से उन्हें भारत सरकार सुरक्षित निकाल लेगी। सोशल मीडिया पर ऐसी कई पोस्ट हैं जिनमें ये विद्यार्थी भारत सरकार से तत्काल मदद की मांग कर रहे हैं।

इस घटनाक्रम के बाद एक पुराना प्रश्न फिर खड़ा हो गया है। वह प्रश्न यह है कि क्यों इतनी बड़ी संख्या में भारतीय विद्यार्थी चिकित्सा, अभियांत्रिकी और दूसरे विषयों की पढ़ाई के लिए विदेश जाते हैं? यहां तक के वे उन देशों में जाने से नहीं हिचकते हैं जो शिक्षा के केंद्र के रूप में अव्वल नहीं समझे जाते हैं और जहां अंग्रेजी प्रमुख भाषा भी नहीं है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को भी यह कहना पड़ा है कि भारत से बड़ी संख्या में विद्यार्थी छोटे देशों में भी पढ़ाई के लिए जा रहे हैं। प्रधानमंत्री ने निजी क्षेत्र से देश में और अधिक चिकित्सा महाविद्यालय खोलने के लिए कहा है। यह बात सभी जानते हैं कि हरेक वर्ष अध्ययन के लिए विदेश जाने वाले भारतीय विद्यार्थियों की संख्या लगातार बढ़ रही है। वर्तमान में 7.70 लाख से अधिक भारतीय विद्यार्थी विभिन्न देशों में हैं और वे पढ़ाई और रहने-खाने पर करीब 28 अरब डॉलर से अधिक रकम खर्च कर रहे हैं। सलाहकार कंपनी रेडसियर का अनुमान है कि 2024 तक विदेश में भारतीय विद्यार्थियों की संख्या बढ़कर लगभग 18 लाख तक हो जाएगी और उनका अनुमानित खर्च बढ़कर 80 अरब डॉलर तक पहुंच जाएगा।

यह समझना सरल है कि क्योंधनी एवं मध्यम-आय वाले भारतीय परिवारों के विद्यार्थी अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया या सिंगापुर जैसे शिक्षा के लिए लोकप्रिय माने जाने वाले देश जाते हैं। उन देशों में बड़े महाविद्यालयों में नामांकन पाने, वहीं कार्य करने की अनुमति पाने और बाद में वहीं बसने की ललक इन विद्यार्थियों को इन देशों तक खींच ले जाती है। इस बात पर प्राय: किसी का ध्यान नहीं जाता है कि बड़ी संख्या में भारतीय विद्यार्थी यूक्रेन, किर्गिस्तान, कजाकिस्तान, पोलैंड, रूस या चीन में चिकित्सा विज्ञान की पढ़ाई करने जाते हैं। कई भारतीय विद्यार्थियों के लिए ये देश पसंदीदा जगह बन गए हैं। केवल यूक्रेन में ही करीब 18,000 भारतीय विद्यार्थी हैं।

इसकी एक वजह यह हो सकती है जिसका जिक्र प्रधानमंत्री ने अपने भाषण में किया है। उन्होंने देश में चिकित्सा महाविद्यालयों की कमी होने की बात कही है। देश में हरेक साल 16 लाख से अधिक विद्यार्थी नीट परीक्षा देते हैं। देश में चिकित्सा महाविद्यालयों में एमबीबीएस के लिए करीब 83,000 सीट हैं जिनमें 44,000 सरकारी महाविद्यालयों में हैं। इन महाविद्यालयों में एमबीबीएस की पढ़ाई कम खर्च में पूरी हो जाती है और पढ़ाई की गुणवत्ता भी अच्छी मानी जाती

है। शेष सीटें निजी चिकित्सा महाविद्यालयों में हैं जहां पढ़ाई के मानक अलग-अलग हैं मगर फीस बहुत अधिक है। किसी निजी चिकित्सा महाविद्यालय से एमबीबीएस की पढ़ाई करने में एक विद्यार्थी को 1 करोड़ रुपये से अधिक रकम खर्च करनी पड़ती है। यूक्रेन, चीन, रूस, फिलिपींस और किर्गिस्तान जैसे देशों में यह रकम 20 से 45 लाख रुपये तक हो सकती है।

इनमें कई देशों में पढ़ाई की गुणवत्ता उच्च-स्तरीय है और भारत की तुलना में शिक्षक-छात्र का अनुपात बेहतर है। इन देशों में प्राप्त की गई डिग्री को यूरोप के कई हिस्सों में मान्यता मिली हुई है। अगर कोई विद्यार्थी भारत वापस लौटना चाहता है तो उसे सबसे पहले एक कठिन परीक्षा उत्तीर्ण करनी पड़ती है। यह परीक्षा पास करने के बाद ही उसे भारत में इलाज (प्रैक्टिस) करने की अनुमति दी जाती है।

क्या देश में निजी क्षेत्र द्वारा अधिक संख्या में चिकित्सा महाविद्यालयों की स्थापना से वर्तमान समस्या दूर हो जाएगी? पेशेवर पाठ्यक्रमों सहित शिक्षा में निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ने से खर्च में कमी नहीं आई है। वास्तव में पढ़ाई करने में बेतहाशा खर्च हो रहा है जबकि शिक्षा की गुणवत्ता अपेक्षित नहीं है।

इंजीनियरिंग की पढ़ाई के साथ एक और समस्या है। भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद के तमाम प्रयासों के बावजूद बड़ी संख्या में निजी महाविद्यालयों में शिक्षा के मानक काफी खराब हैं। इन महाविद्यालयों से निकले विद्यार्थियों के लिए रोजगार खोजना काफी मुश्किल होता है।

बिजनेस स्कूलों में पढ़ाई करने वाले विद्यार्थियों के साथ भी लगभग यही समस्या पेश आती है। यहां यह तर्क नहीं दिया जा रहा है कि भारत में श्रेष्ठ निजी विश्वविद्यालयों और महाविद्यालय नहीं हैं मगर वास्तविकता यह है कि इनमें पढ़ाई करना काफी खर्चीला है और मध्यम-आय वर्ग के परिवारों के बच्चों के लिए इनमें दाखिला पाना लगभग असंभव हो जाता है। केंद्र और राज्य सरकारें ऐसे महाविद्यालय और विश्वविद्यालय स्थापित करने में सुस्त रही हैं जहां कम खर्च में गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा प्राप्त की जा सकती हैं। केंद्र और राज्य सरकारों के बजट में शिक्षा के लिए आवंटन उस अनुपात में नहीं होता है जिस अनुपात में भारत जैसी आबादी वाले देश के हिसाब से होना चाहिए। शिक्षा के लिए उच्च मानक लागू करने के लिए संसाधनहीन नियामकों की वजह से यह समस्या और अधिक बढ़ जाती है।

पहले प्रकाशित हो चुके आलेख में मैंने इस बात का उल्लेख किया था कि भारत अपनी युवा आबादी का लाभ लेने में विफल रहा था क्योंकि यहां शिक्षा पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। इसकी एक वजह यह भी रही कि एक के बाद एक सरकारों ने शिक्षा क्षेत्र पर उतना ध्यान नहीं दिया जितना दिया जाना चाहिए था।

शिक्षा के लिए कम आवंटन ही एक मात्र समस्या नहीं है। सरकार निरंतर शिक्षा को बढ़ावा देने में सुस्त रही है। भारत जब स्वाधीन हुआ तो तत्कालीन सरकार देश में विश्व-स्तरीय शिक्षण संस्थान स्थापित करने और दुनिया के अग्रणी विश्वविद्यालयों की मदद से भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान और भारतीय प्रबंध संस्थान स्थापित करने को लेकर गंभीर थी। मगर कालांतर में शिक्षा क्षेत्र एक के बाद एक सरकारों की प्राथमिकताओं की सूची में फिसला गया। नई शिक्षा नीति में अवश्य कुछ अच्छे सुझाव दिए गए हैं। मगर एक बार फिर इस नीति का क्रियान्वयन और इनसे सामने आने वाले परिणामों की सूक्ष्मता से समीक्षा एक महत्त्वपूर्ण पक्ष रहेगा।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:02-03-22

बेढब शहरों की बड़ी भारी कीमत

मंजू मोहन, (पूर्व प्रमुख, सेंटर फॉर ऐट्मस्फेरिक साइंस, आईआईटी)

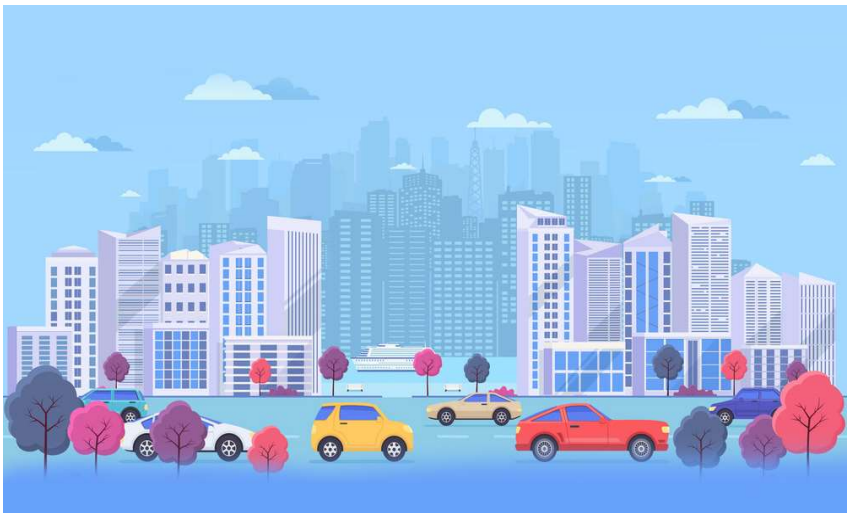

सोमवार को जलवायु परिवर्तन पर अंतर-सरकारी पैनल (आईपीसीसी) ने अपनी छठी मूल्यांकन रिपोर्ट के दूसरे भाग को जारी करते हुए यह चेतावनी दी कि यदि कार्बन उत्सर्जन को जल्द नियंत्रित नहीं किया गया, तो वैश्विक स्तर पर गरमी और आर्द्रता असहनीय हालात पैदा करेंगे, और यह स्थिति भारत जैसे देशों को कहीं ज्यादा प्रभावित करेगी। पहली बार आईपीसीसी की समिति ने अलग-अलग प्रांतों की समीक्षा की है, लेकिन दुर्भाग्य से यह रिपोर्ट उतनी चर्चा नहीं बटोर सकी, जितनी दरकार थी। अभी तमाम देशों की नजर रूस और यूक्रेन की जंग पर है, जबकि युद्ध प्रदूषण का एक बड़ा कारक है। रणभूमि में जितने भी गोला-बारूद या हथियार आदि इस्तेमाल किए जाते हैं, वे काफी मात्रा में प्रदूषण और एरोसॉल (महीन ठोस और तरल कणों की गैस के रूप में मौजूदगी) पैदा करते हैं। सुपरसोनिक और जंगी विमानों की गिनती भी बड़े प्रदूषकों में होती है। इतना ही नहीं, जलवायु मुद्दों पर लगने वाली पूंजी भी युद्ध की तरफ मोड़ दी जाती है, जिससे पर्यावरणीय मसले अनछुए रह जाते हैं।

लिहाजा, यह कहना उचित होगा कि पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने वाले मुद्दों के खिलाफ एकजुट होकर लड़ने का मौका हम गंवा रहे हैं। अभी हमें एक-दूसरे से उलझने के बजाय एकजुटता दिखानी चाहिए और साझा मुद्दों पर लड़ना चाहिए। ऐसा इसलिए भी जरूरी है, क्योंकि पर्यावरण को हमने हद से अधिक बर्बाद कर दिया है। हालिया वर्षों में चक्रवाती तूफान, मानसून आदि की आवृत्ति बढ़ गई है और चरम मौसमी परिघटनाएं भी लगातार घट रही हैं। समुद्र का तापमान इतनी तेजी से बढ़ता जा रहा है कि तटीय इलाकों के लिए काफी विषम परिस्थितियां पैदा हो रही हैं।

आईपीसीसी की नई रिपोर्ट में शहरीकरण को लेकर महत्वपूर्ण बातें कही गई हैं। बताया गया है कि शहर और शहरी केंद्र वैश्विक तापमान को बढ़ाने में लगातार योगदान दे रहे हैं। अनियोजित शहरीकरण पर्यावरण पर नकारात्मक असर डालता है। आंकडे भी तस्दीक कर रहे हैंकि शहर न सिर्फ अपने तापमान को वैश्विक गरमी के लिहाज से अनुकूल बना रहे हैं, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी तापमान को प्रभावित कर रहे हैं। रिपोर्ट की मानें, तो अनियोजित शहरीकरण ने न सिर्फ गरमी, बल्कि एरोसॉल बढ़ाने का भी काम किया है। इनसे मौसम एवं जलवायु लगातार प्रभावित हो रहे हैं। शहरों में ऊंची-ऊंची इमारतें बन गई हैं, जिनमें इस्तेमाल होने वाली सामग्रियां 'री-रेडीएट' (विकिरण को अवशोषित करने के बाद

फिर से विकिरण करना) करती हैं। नतीजतन, रात का न्यूनतम तापमान बढ़ चला है। यह वृद्धि उन उपकरणों से भी हो रही है, जो सुविधा के नाम पर शहरों में दिन-रात इस्तेमाल किए जा रहे हैं या फिर हर वक्त सड़कों पर दौड़ने वाली गाड़ियों के कारण।

एक हालिया अध्ययन बताता है कि शहरीकरण के कारण बढ़ने वाला तापमान तूफान और गरज के साथ बिजली जैसी मौसमी परिघटनाओं की बारंबारता बढ़ा रहा है। बारिश पर भी इसका असर पड़ता है। हमने देखा भी है कि इन दिनों न सिर्फ तेज बारिश आने की आवृत्ति बढ़ी है, बल्कि चरम मौसमी घटनाओं में भी तेजी आई है। आईपीसीसी की रिपोर्ट बताती है कि मध्यम श्रेणी वाली बारिश के बरसने की दर कम हुई है, जबकि तेज बारिश की दर बढ़ी है। बढ़ती वैश्विक गरमी ने मानसून को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है।

यह रिपोर्ट भारत को लेकर बहुत अच्छी तस्वीर नहीं दिखा रही। रिपोर्ट में कहा गया है कि वादे के मुताबिक अगर उत्सर्जन कम कर लिया गया, तब भी उत्तरी और तटीय भारत के कई इलाकों में इस शताब्दी के अंत तक 'वेट-बल्ब' तापमान (गरमी और आर्द्रता को एक साथ मापने वाला मापक) 31 डिग्री सेल्सियस से ज्यादा रहेगा। हालांकि, नीतिगत मोर्चे पर हमारी सरकार ने काफी अच्छा काम किया है। हमने आबोहवा सुधारने को लेकर अच्छी कार्ययोजना बनाई है और उस पर हम संजीदगी के साथ आगे बढ़ रहे हैं। अक्षय ऊर्जा के लिहाज से अब 2030 के उस लक्ष्य की ओर हम बढ़ गए हैं, जिसकी राह प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने दिखाई है। हमें अब अक्षय ऊर्जा (फिर चाहे वह सौर हो या पवन ऊर्जा) पर अधिक से अधिक निर्भरता और कोयले के इस्तेमाल को अधिक से अधिक हतोत्साहित करने की दिशा में काम करना चाहिए। इतना ही नहीं, इलेक्ट्रिक वाहन (ईवी) की तरफ भी हमें काफी अधिक गंभीरता दिखानी होगी। हरित पट्टियों पर जोर देना होगा और शहरों में जंगली क्षेत्र का विस्तार करना भी बहुत जरूरी है। हां, पराली जलाना या प्लास्टिक आदि का कचरा भी हमारी आबोहवा के लिए एक बड़ा खतरा है, जिनके खिलाफ कमर कसने की आवश्यकता है।

मगर दिक्कत यह है कि ये तमाम नीतियां कागजों पर जितनी मजबूत है, जमीन पर उतनी नहीं दिखतीं। जाहिर है, जनता के स्तर पर काफी काम किए जाने की जरूरत है। तंत्र को इस दिशा में सक्रिय होना पड़ेगा और आम लोगों को लगातार जागरूक करना होगा।

अनियोजित शहरीकरण के उपाय जल्द से जल्द तलाशने भी जरूरी हैं। ऐसा बिल्कुल नहीं है कि हमें शहरीकरण से ही तौबा कर लेना चाहिए, लेकिन बीच का रास्ता जरूर निकालना चाहिए। अच्छी बात है कि हाल के वर्षों में वैकल्पिक रास्ते की खोज बढ़ चली है और शहरों की सड़कों पर इलेक्ट्रिक गाड़ियां भी अब दिखने लगी हैं। हमें यह समझना ही होगा कि हरेक शहर के विस्तार की एक सीमा होती है। चंद शहरों पर क्षमता से अधिक भार डालने का एक नतीजा वायु प्रदूषण के रूप में हम झेल रहे हैं। अध्ययन यही बताते हैं कि हर शहर यह जानता है कि वह किस हद तक प्रदूषण को खुद में समेट सकता है, लेकिन हम उसे अनसुनी कर देते हैं। लिहाजा, बदलती जीवनशैली के हिसाब से शहरीकरण और उसके विस्तार का खाका खींचने की जरूरत है। हमें इसके लिए मापदंड बनाने होंगे। हमें विकास भी चाहिए और प्रदूषण से मुक्ति भी। इसके लिए शहरों का विकेंद्रीकरण एक बेहतर उपाय है।